e-ISSN: 2319-8753 | p-ISSN: 2347-6710

IJIRSET

International Journal of Innovative Research in
SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

Volume 11, Issue 6, June 2022

INTERNATIONAL
STANDARD
SERIAL
NUMBER
INDIA

Impact Factor: 8.118

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

|| Volume 11, Issue 6, June 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106208 |

संस्कृत साहित्य में वनों का धार्मिक एवं साहित्यिक महत्व

Dr. Salini Sengar

MA (Sanskrit), Ph.D. , Dr. BR Ambedkar University, Agra, India

सार

ऋग्वेदकाल से लेकर आज तक संस्कृत भाषा के माध्यम से सभी प्रकार के वाङ्मय का निर्माण होता आ रहा है। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी के छोर तक किसी न किसी रूप में संस्कृत का अध्ययन अध्यापन अब तक होता चल रहा है। भारतीय संस्कृति और विचार की धारा का माध्यम होकर भी यह भाषा अनेक दृष्टियों से धर्मनिरपेक्ष (सेक्यूलर) रही है। इस तरह भाषा में धार्मिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक औजूझ संस्कृत भाषा का साहित्य अनेक अमूल्य ग्रंथरत्नों का सागर है, इतना समृद्ध साहित्य किसी भी दूसरी प्राचीन भाषा का नहीं है और न ही किसी अन्य भाषा की परम्परा अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में इतने दीर्घ काल तक रहने पाई है। अति प्राचीन होने पर भी इस भाषा की सृजन-शक्ति कुण्ठित नहीं हुई, इसका धातुपाठ नित्य नये शब्दों को गढ़ने में समर्थ रहा है।विश्वभर की समस्त प्राचीन भाषाओं में संस्कृत का सर्वप्रथम और उच्च स्थान है। विश्व-साहित्य की पहली पुस्तक ऋग्वेद इसी भाषा का देदीप्यमान रत्न है। भारतीय संस्कृति का रहस्य इसी भाषा में निहित है। संस्कृत का अध्ययन किये बिना भारतीय संस्कृति का पूर्ण ज्ञान कभी सम्भव नहीं है।अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाओं की यह जननी है। आज भी भारत की समस्त भाषाएँ इसी वात्सल्यमयी जननी के स्तन्यामृत से पुष्टि पा रही हैं। पाश्चात्य विद्वान इसके अतिशय समृद्ध और विपुल साहित्य को देखकर आश्चर्य-चकित होते रहे हैं। भारतीय भाषाओं को जोड़ने वाली कड़ी यदि कोई भाषा है तो वह संस्कृत ही है।विश्व की समस्त प्राचीन भाषाओं और उनके साहित्य (वाङ्मय) में संस्कृत का अपना विशिष्ट महत्त्व है। यह महत्त्व अनेक कारणों और दृष्टियों से है। भारत के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, अध्यात्मिक, दर्शनिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन एवं विकास के सोपानों की संपूर्ण व्याख्या संस्कृत वाङ्मय के माध्यम से आज उपलब्ध है। सहस्राब्दियों से इस भाषा और इसके वाङ्मय को भारत में सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त रही है। भारत की यह सांस्कृतिक भाषा रही है। सहस्राब्दियों तक समग्र भारत को सांस्कृतिक और भावात्मक एकता में आबद्ध रखने को इस भाषा ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसी कारण भारतीय मनीषा ने इस भाषा को अमरभाषा या देववाणी के नाम से सम्मानित किया है।

संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग कृ धातु तिन् प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ है सुधारना, सुन्दर बनाना, पूर्ण बनाना। 'परि' एवं 'आ' उपसर्गपूर्वक "वृञ्" धातु से ल्युट (अन्) के योग से निष्पन्न पर्यावरण शब्द का अर्थ है - "परितः आवरणम्" अर्थात् चारों ओर से व्याप्त आवरण (घेरा) या वातावरण। यह वह वातावरण है जिसे हम प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से उपभोग करते हैं। आवरण का शाब्दिक अर्थ हैं - ढकना, छिपना, घेरना, चारदीवारी आदि। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण शब्द का प्रयोग परिधि और परिवेश के रूप में प्राचीन काल से होता रहा है।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

|| Volume 11, Issue 6, June 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106208 |

परिचय

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण को दैवतुल्य स्थान प्राप्त है। भारतीय संस्कृति में वेदों, पुराणों, धार्मिक ग्रन्थों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। [1] आदिम सभ्यता से ही प्रकृति के विविध रूपों यथा - सूर्य, चन्द्रमा, धरती, नदी, पर्वत, पीपल, गाय, बैल आदि की पूजा का विधान भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। पर्यावरण मनुष्य की जीवनदायिनी सत्ता है। भारतीय संस्कृति में भौगोलिक, खगोलीय एवं प्राकृतिक पर्यावरण की चिंता के साथ नैतिक एवं आध्यात्मिक पर्यावरण के प्रति भी विशेष ध्यान दिया गया है। हमारे मूलभूत संस्कारों में, धर्म में ऐसे पवित्र विचारों को शामिल कर दिया गया है कि हम स्वतः मानसिक, वाचिक एवं कायिक सुचिता का व्यवहार करें। प्रकृति तत्वों के साथ हमने रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करके उन्हें अपने व्यक्तित्व के साथ पूरी तरह जोड़ लिया है। पर्यावरण का अर्थ है - जीवन को संरक्षण प्रदान करने वाला कवच अर्थात् हमारे चारों ओर का आवरण। पर्यावरण संरक्षण से अभिप्राय है कि हम अपने चारों ओर के आवरण को संरक्षित करें तथा उसे अनुकूल बनाए। पर्यावरण और प्राणी एक-दूसरे पर आश्रित है। यही कारण है कि भारतीय चिन्तन परंपरा में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है, जितना यहाँ मानव जाति का ज्ञात इतिहास है। आदिवासियों के संदर्भ में जल, जंगल, ज़मीन का महत्व आज भी नज़र अन्दाज़ नहीं किया जा सकता। सृष्टि में प्राणी-मात्र का जीवन प्रकृति के बिना असम्भव प्रायः है। प्राकृतिक असन्तुलन के कारण बढ़ते तापमान से हिमखण्ड पिघल रहे हैं। ग्लोबल वार्मिंग की भयावह स्थिति से पूरा विश्व आंतकित है, जिसका निवारण आज एक चुनौतीपूर्ण कार्य बन गया है।

ऋग्वेदसंहिता के कतिपय मंडलों की भाषा संस्कृतवाणी का सर्वप्राचीन उपलब्ध स्वरूप है। ऋग्वेदसंहिता इस भाषा का पुरातनतम ग्रंथ है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ऋग्वेदसंहिता केवल संस्कृतभाषा का प्राचीनतम ग्रंथ नहीं है - अपितु वह आर्य जाति की संपूर्ण ग्रंथराशि में भी प्राचीनतम ग्रंथ है। दूसरे शब्दों में, समस्त विश्ववाङ्मय का वह (ऋक्संहिता) सबसे पुरातन उपलब्ध ग्रंथ है। दस मंडलो के इस ग्रंथ का द्वितीय से सप्तम मंडल तक का अंश प्राचीनतम और प्रथम तथा दशम मंडल अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। ऋग्वेदकाल से लेकर आज तक उस भाषा की अखंड और अविच्छिन्न परंपरा चली आ रही है। ऋक्संहिता केवल भारतीय वाङ्मय की ही अमूल्य निधि नहीं है - वह समग्र आर्यजाति की, समस्त विश्ववाङ्मय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विरासत है।विश्व की प्राचीन प्रागैतिहासिक संस्कृतियों को जो अध्ययन हुआ है, उसमें कदाचित् आर्यजाति से संबद्ध अनुशीलन का विशिष्ट स्थान है। [2] इस वैशिष्ट्य का कारण यही ऋग्वेदसंहिता है। आर्यजाति की आद्यतम निवासभूमि, उनकी संस्कृति, सभ्यता, सामाजिक जीवन आदि के विषय में अनुशीलन हुए हैं ऋक्संहिता उन सबका सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रामाणिक स्रोत रहा है। पश्चिम के विद्वानों ने संस्कृत भाषा और ऋक्संहिता से परिचय पाने के कारण हो तुलनात्मक भाषाविज्ञान के अध्ययन को सही दिशा दी तथा आर्यभाषाओं के भाषाशास्त्रीय विवेचन में प्रौढ़ि एवं शास्त्रीयता का विकास हुआ। भारत के वैदिक ऋषियों और विद्वानों ने अपने वैदिक वाङ्मय को मौखिक और श्रुतिपरंपरा द्वारा प्राचीनतम रूप में अत्यंत सावधानी के साथ सुरक्षित और अधिकृत अनाए रखा। किसी प्रकार के ध्वनिपरक, मात्रापरक यहाँ तक कि स्वर (ऐक्सेंट) परक परिवर्तन से पूर्णत: बचाते रहने का नि:स्वार्थ भाव में वैदिक वेदपाठी सहस्रब्दियों तक अथक प्रयास करते रहे। "वेद" शब्द से मंत्रभाग (संहिताभाग) और

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

|| Volume 11, Issue 6, June 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106208 |

"ब्राह्मण" का बोध माना जाता था। "ब्राह्मण" भाग के तीन अंश - (1) ब्राह्मण, (2) आरण्यक और (3) उपनिषद् कहे गए हैं। लिपिकला के विकास से पूर्व मौखिक परंपरा द्वारा वेदपाठियों ने इनका संरक्षण किया। बहुत सा वैदिक वाङ्मय धीरे-धीरे लुप्त हो गया है। पर आज भी जितना उपलब्ध है उसका महत्त्व असीम है। भारतीय दृष्टि से वेद को अपौरुषेय माना गया है। कहा जाता है, मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने मंत्रों का साक्षात्कार किया। आधुनिक जगत् इसे स्वीकार नहीं करता। फिर भी यह माना जाता है कि वेदव्यास ने वैदिक मंत्रों का संकलन करते हुए संहिताओं के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित किया। अत: संपूर्ण भारतीय संस्कृति वेदव्यास की युग-युग तक ऋणी बनी रहेगी।इसका रचनाकाल ईसा से 5500-5200 पूर्व माना जाता है। भारतीय विद्वानों ने वेदों के रचनाकाल का आरंभ ४५०० ई.पू. से माना है परन्तु यूरोपीय विद्वान इनकी रचना का काल ईसा से २०००-११०० पूर्व मानते है।

यहाँ साहित्य शब्द का प्रयोग "वाङ्मय" के लिए है। ऊपर वेद संहिताओं का उल्लेख हुआ है। वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनकी अनेक शाखाएँ थीं जिनमें बहुत सी लुप्त हो चुकी हैं और कुछ सुरक्षित बच गई हैं जिनके संहिताग्रंथ हमें आज उपलब्ध हैं। इन्हीं की शाखाओं से संबद्ध ब्राह्मण, अरण्यक और उपनिषद् नामक ग्रंथों का विशाल वाङ्मय प्राप्त है। वेदांगों में सर्वप्रमुख कल्पसूत्र हैं जिनके अवांतर वर्गों के रूप में और सूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र (शुल्बसूत्र भी है) का भी व्यापक साहित्य बचा हुआ है। इन्हीं की व्याख्या के रूप में समयानुसार धर्मसंहिताओं और स्मृतिग्रंथों का जो प्रचुर वाङ्मय बना, मनुस्मृति का उनमें प्रमुख स्थान है। वेदांगों में शिक्षा-प्रातिशाख्य, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छंद शास्त्र से संबद्ध ग्रंथों का वैदिकोत्तर काल से निर्माण होता रहा है। अब तक इन सबका विशाल साहित्य उपलब्ध है। आज ज्योतिष की तीन शाखाएँ-गणित, सिद्धांत और फलित विकसित हो चुकी हैं और भारतीय गणितज्ञों की विश्व की बहुत सी मौलिक देन हैं। पाणिनि और उनसे पूर्वकालीन तथा परवर्ती वैयाकरणों द्वारा जाने कितने व्याकरणों की रचना हुई जिनमें पाणिनि का व्याकरण-संप्रदाय 2500 वर्षों से प्रतिष्ठित माना गया और आज विश्व भर में उसकी महिमा मान्य हो चुकी है। पाणिनीय व्याकरण को त्रिमुनि व्याकरण भी कहते हैं, क्योंकि पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि इन तीन मुनियों के सत्प्रयास से यह व्याकरण पूर्णता को प्राप्त किया। यास्क का निरुक्त पाणिनि से पूर्वकाल का ग्रंथ है और उससे भी पहले निरुक्तिविद्या के अनेक आचार्य प्रसिद्ध हो चुके थे। शिक्षाप्रातिशाख्य ग्रंथों में कदाचित् ध्वनिविज्ञान, शास्त्र आदि का जितना प्राचीन और वैज्ञानिक विवेचन भारत की संस्कृत भाषा में हुआ है- वह अतुलनीय और आश्चर्यकारी है। उपवेद के रूप में चिकित्साविज्ञान के रूप में आयुर्वेद विद्या का वैदिकाल से ही प्रचार था और उसके पंडिताग्रंथ (चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, भेडसंहिता आदि) प्राचीन भारतीय मनीषा के वैज्ञानिक अध्ययन की विस्मयकारी निधि है। इस विद्या के भी विशाल वाङ्मय का कालांतर में निर्माण हुआ। इसी प्रकार धनुर्वेद और राजनीति, गांधर्ववेद आदि को उपवेद कहा गया है तथा इनके विषय को लेकर ग्रंथ के रूप में अथवा प्रसंगतिर्गत सन्दर्भों में पर्याप्त विचार मिलता है।[3]

भारतीय संस्कृति में पेड़-पौधों की पूजा की परंपरा सदियों पुरानी रही है। हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में भी वृक्षों की महिमा का वर्णन मिलता है। वृक्षों की पूजा और प्रार्थना के नियम बनाए गए है। "औषधय: शांति वनस्पतय: शांति:" जैसे वैदिक मंत्रों से वृक्षों और वनस्पतियों की पूजा की जाती है। संपूर्ण आयुर्वेद विज्ञान

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

|| Volume 11, Issue 6, June 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106208 |

प्रकृति की इसी देन पर आधारित है। हमारे ऋषियों द्वारा वन में रहते हुए धर्मग्रंथों की रचना करने का यही कारण है कि वहां का शांत और सुरम्य वातावरण उनके अनुकूल था, जो उनके मन को एकाग्र रखने में सहायक होता था। वृक्षों द्वारा उनकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी। धान व कंद-मूल-फल उनके आहार के साधन होते थे। वे फूलों या लताओं के रस से स्याही व लकड़ी सेकलम बनाकर भोजपत्र पर अपनी रचनाएं लिपिबद्ध करते थे। प्राचीन औषधीय गुणों वाले पौधों और वृक्षों को आज सदियों बाद भी पूजनीय माना जाता है और उनकी विधिवत पूजा-अर्चना की जाती है। तुलसी: हिंदू धर्म में तुलसी का स्थान सर्वोपरि माना गया है। तुलसी ही एक ऐसा पौधा है जो अनवरत रूप से वायुमंडल में ऑक्सीजन छोड़ता है। तुलसी के पत्ते, बीज, तना, जड़ और यहां तक कि उसके आसपास की मिट्टी भी विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करने में सहायक होती है। चरणामृत में तुलसी दल का प्रयोग किया जाता है।[4]

विचार-विमर्श

प्राचीन भारत में पर्यावरण की समस्या वर्तमान की तरह विकराल नहीं थी। उस समय अगर प्रदूषण नाममात्र भी रहा हो, तो प्राचीन चिन्तक और साहित्यकार अत्यन्त सजग थे। भारतीय संस्कृति के संस्कृत साहित्य में एक कहावत प्रसिद्ध हैं कि - "प्रक्षालानादि पऽस्य दूरादस्पर्शनं वरम्।" अर्थात् पैर को कीचड़ में सानकर फिर से धोने से अच्छा है कि पैर में कीचड़ लगने ही न दिया जाए। यह वाक्य प्रदूषण निषेध की ओर संकेत करता है।

पंचतत्व:- पंचतत्व का संतुलन न रहना ही पर्यावरण प्रदूषण माना जाता है। मानव जीवन को भी यह प्रभावित करते हैं। तुलसीदास जी ने स्पष्ट कहा है - "क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा। पंचरहित यह अधम शरीरा॥" अर्थात् जो ब्रह्माण्ड में है वही शरीर में है, ब्रह्माण्ड बिगड़ेगा तो शरीर भी बिगड़ेगा। वैदिक ऋषि मनीषियों ने सर्वप्रथम पर्यावरण पर चिन्तन मनन करते हुए सृष्टि को प्रारम्भ अवस्था में जिस प्रकार देखा उसका वर्णन ऋग्वेद की ऋचाओं में इस प्रकार किया है -

"नासदासीनों सदासीतदानी, हिरण्यगर्भा समवर्तताग्रे।"

अर्थात् संसार में पहले न सद् न असद् था, केवल जल ही जल विद्यमान था। इसके हिरण्यगर्भ रूपी ईश्वर ही सर्वप्रथम प्रगट हुए, तभी संसार अस्तित्व में आया। विज्ञान के अनुसार प्रकृति सदैव तीन रूपों में विद्यमान रहती हैं कण, प्रतिकण, विकरण। वैदिक सिद्धांत के अनुसार प्रकृति के मूल तीन वर्ग- त्रयःकृण्यति भूवनस्यरेता विद्यमान है।भारतीय संस्कृति में पर्यावरण चिन्तन की अवधारणा उतना ही प्राचीन है जितना मानव का अस्तित्व। ऋषि-मुनियों ने प्राकृत सत्ता में सभी प्राणियों को स्वीकार किया है और वैदिक काल से ही स्वस्थ्य रहने के लिए मानव देवों से प्रार्थना करता आया है। अर्थात् देवों ने हमारी जो आयु निर्धारित की है उसे हम सब पूर्ण कर सकते हैं। जब मुख में वाणी हों, नासिक्य में प्राण हो, आँखों में देखने के लिए सामर्थ्य हो, कर्णेन्द्रियों में सुनने की क्षमता हो, बालों में पकने का दोष न हो, दन्त स्वच्छ और बाहुओं में बल बना रहे।वेद, वेदांग, उपवेद आदि के अतिरिक्त संस्कृत वाङ्मय में दर्शनशास्त्र का वाङ्मय भी अत्यंत विशाल है।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

|| Volume 11, Issue 6, June 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106208 |

पूर्वमीमांसा, उत्तर मीमांसा, सांख्य, योग, वैशेषिक और न्याय-इन छह प्रमुख आस्तिक दर्शनों के अतिरिक्त पचासों से अधिक आस्तिक-नास्तिक दर्शनों के नाम तथा उनके वाङ्मय उपलब्ध हैं जिनमें आत्मा, परमात्मा, जीवन, जगत्पदार्थमीमांसा, तत्वमीमांसा आदि के सन्दर्भ में अत्यंत प्रौढ़ विचार हुआ है। आस्तिक षड्दर्शनों के प्रवर्तक आचार्यों के रूप में व्यास, जैमिनि, कपिल, पतंजि, कणाद, गौतम आदि के नाम संस्कृत साहित्य में अमर हैं। अन्य आस्तिक दर्शनों में शैव, वैष्णव, तांत्रिक आदि सैकड़ों दर्शन आते हैं। आस्तिकेतर दर्शनों में बौद्धदर्शनों, जैनदर्शनों आदि के संस्कृत ग्रंथ बड़े ही प्रौढ़ और मौलिक हैं। इनमें गंभीर विवेचन हुआ है तथा उनकी विपुल ग्रंथराशि आज भी उपलब्ध है। चार्वाक, लोकायतिक, गार्हपत्य आदि नास्तिक दर्शनों का उल्लेख भी मिलता है। वेदप्रामण्य को माननेवाले आस्तिक और तदितर नास्तिक के आचार्यों और मनीषियों ने अत्यंत प्रचुर मात्रा में दार्शनिक वाङ्मय का निर्माण किया है। दर्शन सूत्र के टीकाकार के रूप में परमादृत शंकराचार्य का नाम संस्कृत साहित्य में अमर है।वैदिक वाङ्मय के अनंतर सांस्कृतिक दृष्टि से वाल्मीकि के रामायण और व्यास के महाभारत की भारत में सर्वोच्च प्रतिष्ठा मानी गई है। महाभारत का आज उपलब्ध स्वरूप एक लाख पद्यों का है। [5]

प्राचीन भारत की पौराणिक गाथाओं, समाजशास्त्रीय मान्यताओं, दार्शनिक आध्यात्मिक दृष्टियों, मिथकों, भारतीय ऐतिहासिक जीवनचित्रों आदि के साथ-साथ पौराणिक इतिहास, भूगोल और परंपरा का महाभारत महाकोश है। वाल्मीकि रामायण आद्य लौकिक महाकाव्य है। उसकी गणना आज भी विश्व के उच्चतम काव्यों में की जाती है। इनके अतिरिक्त अष्टादश पुराणों और उपपुराणादिकों का महाविशाल वाङ्मय है जिनमें पौराणिक या मिथकीय पद्धति से केवल आर्यों का ही नहीं, भारत की समस्त जनता और जातियों का सांस्कृति इतिहास अनुबद्ध है। इन पुराणकार मनीषियों ने भारत और भारत के बाहर से आयात सांस्कृति एवं आध्यात्मिक ऐक्य की प्रतिष्ठा का सहस्राब्दियों तक सफल प्रयास करते हुए भारतीय सांस्कृति को एकसूत्रता में आबद्ध किया है।

संस्कृत के लोकसाहित्य के आदिकवि वाल्मीकि के बाद गद्य-पद्य के लाखों श्रव्यकाव्यों और दृश्यकाव्यरूप नाटकों की रचना होती चली जिनमें अधिकांश लुप्त या नष्ट हो गए। पर जो स्वल्पांश आज उपलब्ध है, सारा विश्व उसका महत्त्व स्वीकार करता है। कवि कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक को विश्व के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में स्थान प्राप्त है। अश्वघोष, भास, भवभूति, बाणभट्ट, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, शूद्रक, विशाखदत्त आदि कवि और नाटककारों को अपने अपने क्षेत्रों में अत्यंत उच्च स्थान प्राप्त है। सर्जनात्मक नाटकों के विचार से भी भारत का नाटक साहित्य अत्यंत संपन्न और महत्वशाली है। साहित्यशास्त्रीय समालोचन पद्धति के विचार से नाट्यशास्त्र और साहित्यशास्त्र के अत्यंत प्रौढ़, विवेचनपूर्ण और मौलिक प्रचुरसख्यक कृतियों का संस्कृत में निर्माण हुआ है। सिद्धांत की दृष्टि से रसवाद और ध्वनिवाद के विचारों को मौलिक और अत्यंत व्यापक चिंतन माना जाता है। स्तोत्र, नीति और सुभाषित के भी अनेक उच्च कोटि के ग्रंथ हैं। इनके अतिरिक्त शिल्प, कला, संगीत, नृत्य आदि उन सभी विषयों के प्रौढ़ ग्रंथ संस्कृत भाषा के माध्यम से निर्मित हुए हैं जिनका किसी भी प्रकार से आदिमध्यकालीन भारतीय जीवन में किसी पक्ष के साथ संबंध रहा है। ऐसा समझा जाता है कि द्यूतविद्या, चौरविद्या आदि जैसे विषयों पर ग्रंथ बनाना भी संस्कृत पंडितों ने नहीं

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

|| Volume 11, Issue 6, June 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106208 |

छोड़ा था। एक बात और थी। भारतीय लोकजीवन में संस्कृत की ऐसी शास्त्रीय प्रतिष्ठा रही है कि ग्रंथों की मान्यता के लिए संस्कृत में रचना को आवश्यक माना जाता था। इसी कारण बौद्धों और जैनों, के दर्शन, धर्मसिद्धान्त, पुराणगाथा आदि नाना पक्षों के हजारों ग्रंथों को पालि या प्राकृत में ही नहीं संस्कृत में सप्रयास रचना हुई है। संस्कृत विद्या की न जाने कितनी महत्वपूर्ण शाखाओं का यहाँ उल्लख भी अल्पस्थानता के कारण नहीं किया जा सकता है। परंतु निष्कर्ष रूप से पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि भारत की प्राचीन संस्कृत भाषा-अत्यंत समर्थ, संपन्न और ऐतिहासिक महत्त्व की भाषा है। इस प्राचीन वाणी का वाङ्मय भी अत्यंत व्यापक, सर्वतोमुखी, मानवतावादी तथा परमसंपन्न रहा है। विश्व की भाषा और साहित्य में संस्कृत भाषा और साहित्य का स्थान अत्यंत महत्वशाली है। समस्त विश्व के प्रच्यविद्याप्रेमियों ने संस्कृत को जो प्रतिष्ठा और उच्चासन दिया है, उसके लिए भारत के संस्कृतप्रेमी सदा कृतज्ञ बने रहेंगे।[6]

वटवृक्ष :भारतीय संस्कृति में वटवृक्ष को समस्त मनोकामनाएं पूर्ण करने वाला कल्पवृक्ष माना जाता है। औषधीय गुणों से युक्त इस विशालकाय और छायादार वृक्ष का उल्लेख कई धार्मिक ग्रंथों में है। ऐसी कथा प्रचलित है कि वटवृक्ष के नीचे ही सावित्री ने यमराज से सत्यवान के पुनर्जीवन का वरदान मांगा था। इसी दिन की स्मृति में प्रतिवर्ष जेयष्ठ माह की अमावस्या के दिन सौभाग्यवती स्त्रियां वट सावित्री का व्रत रखती है। इस दिन वे वटवृक्ष की पूजा-अर्चना और परिक्रमा करते हुए अपने पति की लंबी आयु के लिए प्रार्थना करती है। इसके अलावा प्राचीन हिंदू तीर्थ प्रयागराज में स्थित सदियों पुराने वटवृक्ष अक्षय वट को अमरत्व के वृक्ष की संज्ञा दी जाती है और ऐसा माना जाता है कि इस वृक्ष का अस्तित्व आदि काल से धरती पर है और सृष्टि के समाप्त हो जाने के बाद भी यह वटवृक्ष नष्ट नहीं होगा।

पीपल : पीपल के वृक्ष के विषय में भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि पीपल का वृक्ष ब्रह्म स्वरूप है। हिंदू धर्म में ऐसी मान्यता है कि पीपल के वृक्ष की जड़ से लेकर पत्तियों तक तैंतीस कोटि देवताओं का वास होता है और इसलिए पीपल का वृक्ष प्रात: पूजनीय माना गया है। लोग इसे देव स्वरूप पवित्र मान कर इसकी पूजा करते है। ऐसा माना जाता कि गौतम बुद्ध की तपस्या पीपल के वृक्ष के नीचे ही पूर्ण हुई थी। आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा भी पीपल के औषधीय गुणों की पुष्टि की गई है।[7]

प्रदूषण के प्रकार:- वर्तमान में संसार का हर क्षेत्र प्रदूषण की समस्या से जूझ रहा है। जल, वायु, मृदा, ध्वनि आदि सभी प्रदूषण आज विकराल रूप धारण करती जा रही है, यहाँ तक अंतरिक्ष भी प्रदूषण के प्रकोप से अछूता नहीं रहा है। इसलिए वैदिकालीन मनुष्यों ने द्युलोक (आकाश या अंतरिक्ष) से लेकर व्यक्ति तक समस्त परिवेश के लिए प्रार्थना की है। शुक्ल यजुर्वेद में ऋषि प्रार्थना करते हैं कि - द्यौ शान्तिरन्तरिक्षः।

वायु प्रदूषण:- आधुनिक युग में बढ़ता औद्योगिक विकास, याता-यात के साधन (वाहन) से निकलने वाला धुआँ और कचरे को जलाने से निकलने वाला धुआँ वायु प्रदूषण का मुख्य कारणों में से है, जिनके कारण आज मानव अनेक बीमारियों का शिकार हो रहा है। आज वायु प्रदूषण से जो हानियाँ बताई जाती हैं और वायु को शुद्ध रखने का जो महत्व बताया जाता है, उसे ऋग्वेद ने एक-दो ऋचाओं में सूत्रबद्ध कर दिया है -

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

|| Volume 11, Issue 6, June 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106208 |

" वात आ वातु भेषजम्, स नो जीवात्वे कृधि।"

अर्थात् हे! वायु तुम स्वास्थ्य की औषधि बनकर बहो। तुम्हीं हमारी जीवन-जड़ी हो आदि। दशम मंडल का यह 186वाँ सूक्त वायु के जीवनदायी स्वरूप की विशद् विवेचन करता है।

शमन्तरिक्ष दुश्यनो अस्तु - अन्तरिक्ष धुआँ, धूल से मुक्त (स्वच्छ) रहे, जिसमें हम सब स्पष्ट देख सकें।

शनो भवित्र शमु अस्तु वायु - अन्तरिक्ष में कल्याणकारी हवा बहती रहे।

शं न दूषिपरो अभिवातु वात - वायु एक स्थान पर बद्ध न होेकर दूषिपर अर्थात् स्वच्छ रूप से दाएँ-बाएँ प्रवाहित होता रहे।

ना मेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ - आग में किसी अपवित्र वस्तु का प्रक्षेपण नहीं करना चाहिए, अन्यथा वह वातावरण को भी दूषित कर देता है। इसलिए कहा गया है कि शुद्ध वायु है तो लम्बी आयु है।

अयं वायु सर्वेषां भूतानां मध्वस्य वायोः सर्वाणि भूतानि मधु - वायु समस्त जीवों का मधु है, समस्त जीव वायु के लिए मधु तुल्य है। सब कुछ आदि और अंत पर टिका है।[8]

परिणाम

संस्कृत साहित्य अत्यन्त प्रगत साहित्य है। उसमें सदा आगे बढ़ने और नयी उंचाइयाँ छूने की प्रवृत्ति है। उसमें सबसे प्राचीन व्याकरण ग्रन्थ है, सबसे प्राचीन शब्दकोश है, सबसे प्राचीन भाषावैज्ञानिक चिन्तन है। उसमें प्राचीनतम दर्शन है, तर्कशास्त्र है, गणित है, चिकित्साशास्त्र है, विधिशास्त्र है। उसमें नीति और धर्म का जो चिन्तन हुआ है वह उच्च कोटि का है। दर्शन को ही लें तो उसमें अनीश्वरवाद सहित विविध मतमतान्तरों का समावेश है। उसमें शास्त्रार्थ करने और ग्रन्थों के भाष्य लिखने तथा आवश्यक होने पर खण्डन तक करने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

नीम : आयुर्वेद में नीम के वृक्ष का विशेष महत्व बताया गया है, इसे 'कृमिःहरः' भी कहा जाता है। इसके पत्तों व छाल से विभिन्न रोगों के कीटाणु नष्ट हो जाते है। विषैले जीवों के काटने पर अगर इसकी कोपलों का सेवन किया जाए तो शरीर में विष नहीं फैलता। खसरा और छोटी चेचक जैसी त्वचा संबंधी बीमारियों में नीम की पत्तियों को उबाल कर उसके पानी से स्नान करना बहुत फायदेमंद साबित होता है। ऐसी मान्यता है कि नीम के वृक्ष पर देवी शीतला माता का निवास होता है, जो सारे दुखों को दूर कर देती है।

केला : सुस्वादु और स्वास्थ्यवर्धक फल केले के वृक्ष को भारतीय संस्कृति में अत्यंत शुभ माना जाता है। विवाह और पूजा-पाठ जैसे शुभ अवसरों पर केले के पत्तों या कदली स्तंभ से मुख्य द्वार और मंडप को सजाया जाता है। भगवान जगन्नाथ को केले के पत्ते पर भोग लगाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि केले के

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

|| Volume 11, Issue 6, June 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106208 |

वृक्ष में भगवान विष्णु का वास होता है और बृहस्पतिवार के दिन केले के वृक्ष की पूजा करने से परिवार में सुख-समृद्धि बनी रहती है।[9]

हिंदू धर्म और संस्कृति में स्वास्थ्यवर्धक और उपयोगी पेड़-पौधों का सम्मान और उनका पूजन करने की परंपरा सदैव से रही है क्योंकि वृक्षों के जीवन का उद्देश्य ही परोपकार है। वृक्ष अपने पत्ते, फूल और फल दूसरों के सुख के लिए देते है और अंत समय में अपना शरीर भी दूसरों की आवश्यकताओं के लिए समर्पित कर देते है।वेदों का संदेश हैं कि मानव शुद्ध वायु में श्वास ले, शुद्ध जलपान करे, शुद्ध अन्न-फल का भोजन करे, शुद्ध मिट्टी में खेले कूदें और कृषि करे, तब ही वेद प्रतिपादित उसकी आयु ''शं जीवेम् शरदः शतम्' ' हो सकती है। वृक्ष वनस्पति भगवान नीलकंठ का रूप हैं क्योंकि वे विषैली गैसों को पीकर अमृतमयी गैस निकालते हैं। अतः वृक्षों को सींचना भगवान शिव को जल चढ़ाने के समान हैं। वेदों में इस बात का संकेत हैं कि पीपल के नीचे बैठना स्वास्थ्यप्रद हैं तथा पलाश (ढाक) के पेड़ दिन-रात सुगन्ध और प्राणवायु छोड़ते हैं। वृक्ष हमारी संस्कृति की धरोहर हैं। इसीलिए अनेक वृक्ष पूज्य माने जाते हैं। तुलसी को विष्णुप्रिया माना गया हैं। विष्णु पुराण में सौ पुत्रों की प्राप्ति से बढ़कर एक वृक्ष लगाना माना गया हैं। भक्त व भगवान के तिलक लगवाने के लिए चन्दन सर्वमान्य हैं। मत्स्य पुराण में दस कुओं, बावडियो, व तालाबो से भी बढ़कर वृक्ष लगाने को विशेष मान्य किया गया हैं। पुराकाल में यदि अपरिहार्य कारणों से किसी वृक्ष को काटना पड़ता था तो वृक्ष से क्षमा माँगने का प्रावधान था। राजस्थान में विश्नोई समाज द्वारा जोधपुर जिले में खेजड़ी के वृक्ष को बचाने हेतु लोगों ने बलिदान दिए हैं। पीपल और बरगद के पेड़ो को तो ब्राह्मण माना गया हैं। अतः उन्हें काटना ब्रह्म हत्या के समान है। तुलसी का पौधा तो इतना पवित्र माना गया हैं कि हर भारतीय उसे घर में लगाता है तथा उसके विवाह की भी परम्परा भारतीय समाज में रही है। हमारे ऋषि महात्माओं के आश्रम वन खण्डों में स्थित है। अनेक पेड़ों के संबंध देवी देवताओं से संलग्न किये गये हैं। पीपल में विष्णु वास, नीम को नारायण कहा गया है। बरगद को भगवान शंकर से संबद्ध माना और तुलसी को सालिगराम की पत्नी के रूप में स्वीकार किया गया है। वैसाख में पीपल पूजा, कार्तिक में आँवला व तूलसी पूजा, मिगसर मास में कदम्ब के वृक्ष को पूजने की परम्परा रही है। पेड़ों की स्थिति पर भी विचार किया जाता है। नीम का पेड़ गाँव की चौपाल पर और पीपल का पेड़ गाँव के बाहर जलाशय के किनारे शोभायमान होता है। हमारे धार्मिक ग्रंथों में यह भी उल्लेख हैं कि पीपल, बरगद को ब्राह्मण माना जाता था और उन्हें काटना ब्रह्म हत्या के समान माना जाता है। जिस वृक्ष पर पक्षियों के घौसलें हों तथा देवालय और श्मशान भूमि पर खड़े पेड़ों को नहीं काटना चाहिए जैसे बड़ ,पीपल, आक, नीम आदि। भारत में आर्यों के आगमन से पूर्व सिंधु घाटी की सभ्यता में प्राप्त मुहरों पर अंकित चित्रों से स्पष्ट हैं कि सिन्धु घाटी के निवासी वृक्षों की पूजा किया करते थे। प्राचीनकाल से ही पेड़ो को सीचनें की परम्परा चली आ रही है। वैसाख महीने में भारतीय नारियाँ व बालिकाएं पीपल के पेड़ को सींचती हैं। इसके पीछे यही धारणा हैं कि ज्येष्ठ मास की भीषण गर्मी से इन पेड़ों को बचाया जा सकें। पेड़ों के बचाव व संरक्षण हेतु गोचर भूमि, डोली और ओरण आदि व्यवस्थाओं को क्रियान्वित किया गया। मंदिरों के पुजारी वन संरक्षण में अपनी भागीदारी का निर्वहन कर सके।[10]

वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है - इमा आपः सर्वेषां भूतानां मध्वासामपाँसर्वाणि भूतानि मधु।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

|| Volume 11, Issue 6, June 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106208 |

यह जल समस्त प्राणियों के लिए अमृत है। जल में अग्नि का वास होता है अतः नग्न स्नान वर्जित था। पुराणों में ऐसी जानकारी दी गई है, जिनको किसी भी पवित्र नदी के किनारे नहीं करना चाहिए-

नाप्सु मूत्रपुरीषं कुर्यात् न निष्ठीवेत् न विवसनः स्नायात् गुह्यौ न इवोग्निः॥

गंगा को माँ का दर्जा दिया गया है और पावन व पवित्र मानी गई है। मनुस्मृति में मनु ने लिखा है - "किसी व्यक्ति को पानी में मल-मूत्र अथवा थूकना नहीं चाहिए, किसी भी वस्तु को या अपवित्र वस्तुओं रक्त, विष से मिश्रित जल को शुद्ध जल में नहीं डालना चाहिए।"

ध्वनि प्रदूषण:- इसके लिए उर्दू शब्द शोर का प्रयोग किया जाता है। तीव्र ध्वनि सिरदर्द, अनिद्रा, तनाव आदि बीमारियों का मूल कारण है। आजकल किसी कार्यक्रम का आयोजन बिना ध्वनि विस्तारक यंत्र के सम्पन्न नहीं होता, जहाँ पर इन यंत्रों के बिना भी कार्य चल सकता है वहाँ भी इसका प्रयोग किया जाता है। यद्यपि संगीत देवोपासना का एक महत्वपूर्ण अंग है किन्तु खेद है कि आजकल ध्वनि के साधनों का दुरुपयोग हो रहा है। रेडियों, ट्रांजिस्टर, टेलीविजन, ध्वनि विस्तारक यंत्र, औद्योगिक संस्थान और वाहन की आवाज हमें बहरा बनाते जा रहे हैं। वेदों में स्वास्थ्य की दृष्टि से तीक्ष्ण आवाज़ से बचने के लिए तथा आपसी वार्तालाप में धीमा और मधुर बोलने के लिए कहा गया है -

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।

सम्यश्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत् भद्रया॥

अर्थात् भाई-भाई से बहन-बहन से द्वेष न करे। परिवार के सभी लोग एक मत व एक होकर आपस में शांति से भद्र पुरुषों के समान भद्रता से वार्तालाप करें। यहाँ ध्वनि में मधुरता की आशा व्यक्त है।

मृदा (पृथ्वी) प्रदूषण:- प्रत्येक आस्थावान व्यक्ति आज भी पृथ्वी को माता तथा स्वयं को उसका पुत्र मानता है। ऋग्वेद के पृथ्वीसूक्त में कहा गया है:- माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। खेद है कि भारत भूमि को माता मानने वाले लोग आज अपनी भूमि को ही प्रदूषित कर रहे हैं। औद्योगिक कचरे, मानव मल-मूत्र, प्लास्टिक (जो सड़ता-गलता नहीं) आदि सभी पर्यावरण को प्रदूषित कर रहे हैं। अतीत की ओर देखने से पता चलता है कि अनेक सभ्यताएँ अपने चरम सीमा पर आने के बाद किसी प्रकार से समाप्त हो गई। हड़प्पा संस्कृति के पतन का कारण में शहर व प्रदेशों के भूमि (मृदा) का बंजर होना बताया जाता है।[11]

निष्कर्ष

अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त के कुल 63 मंत्रों में पृथ्वी की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। पृथ्वी के निर्माण के बारे में कहा गया है –

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संघृता घृता।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

|| Volume 11, Issue 6, June 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106208 |

तस्यै हिरण्यवक्षये पृथिव्या अकरं नमः॥

अर्थात् भूमि, चट्टान, पत्थर और मिट्टी है, मैं उसी हिरण्यगर्भा पृथ्वी के लिए स्वागत वचन बोलता हूँ।

प्रदूषण रोकथाम के उपाय

पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए वर्तमान में कई योजनाएँ बनाई गई हैं जिसमें नियम और कानूनी दण्ड भी शामिल है किन्तु फिर भी कोई ख़ासा परिणाम नहीं निकल सका। भारतीय संस्कृति में मानव की ऐश्वर्यभोग की अभिलाषा को ही पर्यावरण प्रदूषण का कारण माना गया है -

सुखार्थमशुभं कृत्वा य एते भृषदुः खिताः।[12]

आस्वादः स किमेतेषां करोति सुखमण्वपि॥

अर्थात् सुख (ऐश्वर्य) के लिए ही मनुष्य अशुभ कर्म (पर्यावरण ह्रास) करके मनुष्य नाना प्रकार के दुःख भोग रहे हैं, सुख तो अणुमात्र भी नहीं। इसलिए मानव मन की पवित्रता पर बल दिया गया है - यतते मनसः शमे। निर्मल मन और नैतिक नियमों के आचरण से पर्यावरण संरक्षण किया जा सकता है।

वायु प्रदूषण निवारण:-

वन संरक्षण:- वैदिक साहित्य में मनीषियों ने जगह-जगह पर वनों की वैशिष्ट्य का वर्णन किया है यथाः- ततः शिव कुसुमित बालपादपः छायाफलादयर्थ वृक्षमाश्रयते जनः॥ अर्थात् वृक्ष सदा शिव होते हैं अतः फल एवं छाया के लिए लोगों द्वारा लगाये जाते हैं।

जल संरक्षण:- जल है तो जीवन है। यह वाक्य हम सुनते आ रहे हैं। बच्चे के जन्म पर धर्माभिलाषियों के द्वारा जल स्त्रोतों का निर्माण कराये जाने का वर्णन प्राप्त होता है- कूप्रपापुष्कारिणी वनानाम् चक्रुः क्रियास्तत्र च धर्मकामाः। अर्थात् धर्माभिलाषी लोगों ने कुआँ, पोखर, तलाब, बनवाया। जगत्ताय प्रतप्तानां जलराशि च वाच्छतम्:- गर्मी एवं प्यास से व्याकुल जगत् के लिए जल अनिवार्य है। इष्टं हि तर्ष प्रशमाय तोयः- जल के बिना सृष्टि का जीवित रहना असंभव है। जलं पर्युषित त्याज्यम्:- प्यास शांत करने के लिए पवित्र जल इष्ट है।

ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण:- वेदों मे कहा गया है कि मनुष्य को आचरण की मर्यादा निर्धारित करके ही ध्वनि का प्रयोग करना चाहिए अन्यथा असंयमित ध्वनि पर्यावरण प्रदूषण की सृष्टि करता है। एक अथर्ववैदिक ऋषि प्रार्थना करते हैं -

जिव्हाया उग्रे मधु में जिव्हामूले मधूकलम्।

ममेदह कृत्तावसो मम् चित्तमुषायसि॥

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

|| Volume 11, Issue 6, June 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106208 |

अर्थात् मेरी जिह्वा से मधुर स्वर निकले। भगवान का भजन, पूजन तथा कीर्तन करते समय मूल में मधुरता हो। मधुरता मेरे कर्म में निश्चयपूर्वक रहे तथा चित्त की मधुरता सदैव बनी रहे।वर्तमान समय में ध्वनि विस्तारक यंत्रों पर नियंत्रण नितांत आवश्यक है, जिसके कारण हम बहरापन, सिरदर्द, अनिद्रा, तनाव आदि बीमारियों से ग्रसित हो रहे हैं।

मृदा संरक्षण:- "जननी जन्मभमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" की भावना से आप्लावित प्रत्येक भारतीय इनके प्रति जीवन पर्यन्त कृतज्ञता से अभिभूत रहता है, क्योंकि हमारी पृथ्वी (धरती) को माँ का पद दिया गया है -

यस्यामन्न ब्रीहियवौ यस्या इमाः पश्च कृष्टयः।

भूम्यै पर्जन्यपत्नये नमोऽस्तु वर्षमेदसे॥

अर्थात् जिस भूमि में धान, गेहूँ, जौ आदि खाद्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में होते हैं, जहाँ शूरवीर, व्यापारी, शिल्पकार तथा सेवक ये पाँच प्रकार के लोग सुखपूर्वक निवास करते हैं, जिस भूमि में निश्चित समय पर जल वृष्टि होकर अन्नादि उत्पन्न होता है, पर्जन्य से जिसका पोषण होता है, ऐसी मातृभूमि को हमारा नमन है।वर्तमान में मृदा संरक्षण बहुत आवश्यक हो गया है। औद्योगिक अपशिष्ट, प्लास्टिक आदि सभी भूमि की उर्वरता को ख़त्म करते जा रहे हैं, जिसका निवारण अतिआवश्यक है।महाभारत एवं रामायण में वृक्षों के प्रति मनोरम कल्पना की गई हैं (भीष्म पर्व में) - सर्वकाम फलाः वृक्षाः। वृक्ष का महत्व वैदिक साहित्य में बताया गया और वायु को शुद्ध करने में सहायक माना गया है। वैज्ञानिक पक्ष भी इसे स्वीकर करते हैं। वेदों में स्वीकार किया गया है - नमो वृक्षेभ्यः। मत्स्यपुराण में कहा गया है - दसकूपसमावापी दसवापीसमोहृदः दसहृदसमः पुत्रो दसपुत्रोसमो द्रुमः। अर्थात् दस कूप (कुआँ) के समान पुण्य एक वापी (पोखर) बनाने में, दस पोखरों का पुण्य एक तालाब बनाने में, दस तलाब का पुण्य एक पुत्र से तथा दस पुत्र के समान पुण्य एक वृक्ष लगाने से होता है। [11]

यज्ञ:- प्राचीन समय में मान्यता रही है कि यज्ञ द्वारा ही वायु को शुद्ध किया जाता रहा है, यजुर्वेद में यज्ञों को पर्याप्त महत्व प्रदान किया गया है, जिसका सीधा संबंध पर्यावरण शुद्धि से है। कभी-कभी पुराणों के महत्व को वेदों से अधिक माना गया हैः-

वेदार्थः दधिकंमन्य पुराणार्थ वरानने।

वेदाः प्रतिष्ठिताः सम्यक् पुराणे नात्र संशयः॥

यज्ञ की महत्ता को गीता में भगवान ने संकेत दिया है:-

अन्नाद्भवन्ति भूतानिपर्जन्यादन्नसम्भवः।

यज्ञात्भवति पर्जन्यों यज्ञः कर्म समुद्भवः॥

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

|| Volume 11, Issue 6, June 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106208 |

अर्थात् प्रदूषण से भूमि फलवित नहीं होती, सत्यविरोधी अधर्म आचरण से भूमि में अन्नादि नहीं फलते। यज्ञ में दी गई आहुति देवगण नहीं स्वीकारते। यज्ञाग्नि से धूम उत्पन्न होता है, जिससे बादल बनते हैं फिर वही बादल बरसात के रूप में पृथ्वी को हरा-भरा करते हैं।

वर्तमान में कारखाने से निकलने वाला धुआँ, वाहनों से निकलने वाला धुआँ, विभिन्न प्रकार की हानिकारक गैसें जिसका पर्यावरण पर दुष्प्रभाव पड़ता है, उसे नियंत्रित किया जाना अतिआवश्यक है।

वन्य जीव जन्तु भी हमारे पर्यावरण के प्रमुख अंग माने जाते हैं। इनका सही सन्तुलन होने पर पर्यावरण शुद्ध तथा स्वच्छ रहता है। इनकी सुरक्षा के लिए वन्य जीवों को पूज्य मानकर इनकी पूजा का भी प्रावधान हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं में रखा गया है। भारतीय संस्कृति में दस अवतारों में चार अवतार पशुओं व जन्तुओं से संबद्ध हैं जैसे मत्स्य अवतार, वराह अवतार, कच्छप अवतार तथा नृसिंह अवतार आदि। विशेषतः गणेश, हनुमान और नागपूजा की व्यवस्था की गई हैं ताकि लोगों में पशु प्राणियों के लिए आस्था अक्षुण्य बनी रहे। गायों की महत्ता को प्रकट करने हेतु गोपाष्टमी, बछबारस का त्योहार मनाया जाता हैं। गाय किसानों की जीवन धारा है। कृषि भूमि में उत्पादन को हानि पँहुचाने वाले चूहों पर नियन्त्रण रखने वाले सांपों के प्रति श्रद्धा सूचक नाग पंचमी व गोगानवमी का त्यौंहार मनाया जाने लगा। पशु पक्षियों के संरक्षण हेतु अनेक परम्पराएं भारतीय समाज में प्रचलित है। शनिवार के दिन ‘कीड़ी नगरा’ ’ सींचने की परम्परा में उन चींटियों की सुरक्षा की व्यवस्था दी गई है जो हानिकारक उदई तथा बर नियन्त्रण करती है, जो नई मिट्टी बाहर निकालते है। मरे हुए जानवरों की गंदगी को दूर करने वाले कौओं के प्रति श्रद्धा स्वरूप श्राद्ध पक्ष में उनको भोजन खिलाने की परम्परा है। विवाह के समय तोरण लगाने की परम्परा में भी पक्षियों को याद किया है। तोरण पर प्रतीकात्मक रूप से पक्षियों की आकृतियाँ बनाई जाती है। भोजन से पहले एक रोटी अथवा पाँच ग्रास चींटी, कौए, कुत्ते आदि के लिए निकालकर उन्हे जीवित रखने की व्यवस्था प्रकट की गई है। ‘‘जल ही जीवन है’ ’ ।अतः जल के शुद्धीकरण एवं पवित्रता बनाये रखने का प्रयत्न प्राचीन काल से चला आ रहा है। जल को भारतीय समाज में देवता माना गया है। जल संरक्षण की परम्परा से नदियों को ‘‘माता’ ’ का स्थान दिया गया है। इनकी पूजा की जाती है। गंगाजल को समस्त संस्कारों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कुंआ, बावड़ी, तालाब तथा झीलों के निर्माण की धार्मिक प्रथाएं रही है। गाँवों में आज भी जल स्त्रोतों को गंदा करने पर सामाजिक प्रतिबन्ध रहता है। लोग शिवरात्रि पर हरिद्वार से कावड़ में गंगाजल लेकर कई मीलों तक यात्रा करते हुए घर पहुंचने की प्रथा चली आ रही है। नदियाँ भूमिगत जल का स्तर ऊँचा उठाती हैं और प्राकृतिक सौन्दर्य में वृद्धि करती है। पृथ्वी पर जल का तीन चौथाई हिस्सा होते हुए भी पीने योग्य जल का हिस्सा 0.33 प्रतिशत हैं। जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ जल संकट बढ़ता जा रहा हैं। अतः जल संरक्षण आवश्यक हो गया है। संसार में पर्यावरण संरक्षण का कार्य सर्वप्रथम ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में सम्राट अशोक ने किया था। प्रकृति की महत्ता को स्वीकारते हुए वन्य जीव जन्तुओं के शिकार पर प्रतिबन्ध लगाया जो आज भी अशोक के शिलालेखों में अंकित है। जल को आदि काल से शुद्ध व पवित्र बनाए रखने का प्रयास किया जाता है। पवित्र नदियों के जल को बड़ी धूमधाम से गृह प्रवेश कराया जाता है। गंगा प्रसादी के रूप में भोज का आयोजन होता है। पुरातन जल संसाधनों के रख रखाव पर बड़ा ध्यान था। कुए, बावड़ी,

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

|| Volume 11, Issue 6, June 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106208 |

झालरों का निर्माण कराना धार्मिक कृत्य माना जाता है। जल स्त्रोंतों को गंदा करने पर दण्ड का विधान था। प्राचीन काल में ऋषि आश्रमों में शिक्षा प्राप्ति के साथ साथ विभिन्न प्रकार के पेड़ लगाने तथा उन्हें सिंचित करने का पुनीत कर्म करना आवश्यक था। यदि कोई दंपति निसंतान होता तो पेड़ लगाने या कुआं या बावड़ी बनवाने से उससे मुक्ति मिलने की मान्यता थी। धर्म परायण व्यक्ति जलाशय बनाकर, वृक्षारोपण कर, देवालय बनवाकर धर्म में संवर्धन करते थे।[12]

हमारे पुरातन साहित्य में पर्यावरण की महत्ता को विभिन्न प्रकरणों एवं तरीकों से समझाने का प्रयास हुआ है। पर्यावरण सुरक्षा व संवर्धन ने विभिन्न उपायों का उल्लेख हुआ है। तत्कालीन साहित्य में पर्यावरण संतुलन बनाये रखने के अनेक सुझाव प्रस्तुत हुए है। ज्ञान और नीतिपरक पंचतंत्र की कहानियों तथा जातक कथाओं में वन्य जीवन सें संबंधित अनेकानेक प्रसंगों को उद्घाटित किया गया है। सभी ग्रहों नक्षत्रों के साथ पंचतत्वों पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश तथा प्रकृति पर्वत तथा नदी, वन को देवता मानकर उनकी पूजा अर्चना का प्रावधान है। यजुर्वेद में भूमि प्रदुषण पर नियंत्रण हेतु उल्लेख है कि- ''पृथिवी मातर्मा मा हिंसीर्मो अहं त्वाम' ' – यजुर्वेद 10/23अर्थात् हे! माता तुम हमारा पालन पोषण उत्तम रीति से करती हो। हम कभी भी तुम्हारी हिंसा (दुरुपयोग) न करें। रासायनिकों व कीट नाशकों के अति प्रयोग से तुम्हारा कुपोषण न करें बल्कि फसल हेर-फेरकर बोने तथा गोबर, जल आदि से तुम्हें पोषित करें। क्षरण की रोक हेतु वृक्ष लगाये क्योंकि तुम्हारे पोषण पर ही हमारा पोषण निर्भर है। भूमि की उपजाऊ क्षमता न्यून व क्षीण हो गई है तो इस भूमि पर कुछ समय खेती बाड़ी नहीं करे, जिससे प्रकृति ,वायु, सूर्य, रश्मि वर्ष भर में उन्हें उर्वरा बना देगें, ऐसे निर्देश वेदों में प्रकट हुए है। इस संबंध में इन सराहनीय सुझावों की क्रियान्विति से पर्यावरण संरक्षण की व्यवस्था को बल मिलेगा। सूखी पहाड़ियों पर तरुपुत्र यज्ञों के माध्यम से वृक्षारोपण द्वारा स्मृति उपवन बनाना। मंदिरों और उद्यानों में वृक्ष वाटिकाओं का निर्माण करना। नदी किनारे खेतों की मेंड़ो आदि पर भूमि कटाव को रोकने हेतु छायादार वृक्ष लगाना। मंदिर व धार्मिक स्थलों पर त्रिवेणी- (पीपल ,बरगद, नीम), पंचवटी(नीम, पीपल, बरगद,जामुन, आँवला), हरिशंकरी- (बरगद, पीपल, पाकड़) का वृक्षारोपण करना। प्रत्येक गाँव में देवालयों व गोचर भूमि तथा बंजर भूमि में वृक्षारोपण करना। शिक्षण संस्थानों में तरुमित्र योजनान्तर्गत विद्यार्थियों से वृक्षारोपण कराना। श्मशान घाटों पर धार्मिक महत्व के छायादार पेड़ लगाना। राजमार्गों के किनारों पर छायादार वृक्ष लगाना।

आज हमारी पुरातन परम्पराएं और रीति रिवाज समाप्त प्रायः हो गये है। वर्तमान सभ्यता और भौतिकता विषबैल इतनी फलित हो गई हैं कि समग्र संस्कृति को पाला मार गया है। तुलनात्मक दृष्टि से यह देखा जाए तो आज के इस भौतिक युग में मनुष्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थ में अंधा हो गया हैं और हमारी प्राचीन धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं की मान मर्यादाओं और भावनाओं को जीवन से तिरोहित करता जा रहा है। पूर्व की हमारी प्रकृति-उपासना की आस्थाएं समाप्त हो गई है। जिस श्रद्धा और आस्था के साथ हम प्रकृति की पूजा करते थे, आज वह भावना समाप्त हो गई है। प्रकृति के दोहन से अधिकाधिक अर्थलाभ की भावना में वृद्धि हो गई हैं। वृक्ष पूजा केवल प्रतीकात्मक रह गई है। आज बरगद, पीपल, नीम, आंवला आदि का महत्व कम होता जा रहा है। गोचर भूमि पर अत्यधिक अतिक्रमण हो रहे है। वहां आवासीय भवन खड़े

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

|| Volume 11, Issue 6, June 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106208 |

किए जा रहे है। पशु पक्षियों की जातियाँ लुप्त होती जा रही हैं। हमारे जल स्त्रोत अब बस्ती के कचरादान बनते जा रहे है। जिन नदियों को हम मातृवत् पूजते रहे हैं , अब उनमें कल-कारखानों का प्रदूषित जल प्रवाहित हो रहा है। आज भी हमारी पुरातन पर्यावरण संरक्षण की प्रथाओं को सामाजिक स्तर पर प्रधानता देते हुए, इन परम्पराओं का अनुगमन दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ किया जाए तो पर्यावरण संतुलन तथा संरक्षण को प्रगाढ़ता मिलेगी।भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संचेतना के विषय में मैंने विभिन्न प्रदूषण एवं निवारण की चर्चा की है, जिसमें वर्तमान की अपेक्षा वैदिक कालीन ऋषि-मुनियों की विचारधारा मानव हित में रहा है जो भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। वैदिक मंत्रों में उल्लेख है -

ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

अर्थात् मनुष्य अपनी इच्छाओं को वश में रखकर प्रकृति से उतना ही ग्रहण करें कि उसकी पूर्णता को क्षति न पहुँचे।इसलिए कहा गया है "वेदों की ओर लौटो" अथवा "प्रकृति की ओर वापस चलो।" यदि अभी हम प्रकृति के प्रति संवेदनशील नहीं बनेंगे तो हमारी संस्कृति एवं सभ्यता का विनाश निश्चित है। वसुधैव कुटुम्बकम् और सादा जीवन उच्च विचार वाला देश आज पाश्चात्य अवधारणा के वशीभूत होकर वसुधैव आपणम् और खाओ-पियो और मौज करो का शिकार हो गया है। आवश्यकता है पर्यावरणीय जागरूकता की। सन् 2000 में अर्थचार्टर कमीशन में पृथ्वी संकट पर तीन दिवसीय सम्मेलन हुआ, जिसमें दो दिन में 22 सूत्र छाँटे गए तथा सम्मेलन के आख़िरी दिन अथर्ववेद की पृथ्वीसूक्त की चर्चा की गई। यह बड़ी आश्चर्य की बात है कि वैज्ञानिकों ने जिन 22 सूत्रों की चर्चा की थी, वह पहले ही अथर्ववेद में उपलब्ध है। अतः आज पर्यावरण संकट से निपटने के लिए पूरी दुनिया को आधुनिक उपायों के साथ वैदिक दर्शन की भी महत्ती आवश्यकता है, तभी हमारी भारतीय संस्कृति और सभ्यता सदैव आयुष्मान रहेगी।[13]

संदर्भ

1. Computational Thinking in the IndicTradition Archived 2017-03-20 at the Wayback Machine (K Gopinath, IISc)
2. ↑ Sanskrit's elitism: A counter narrative of popular notion
3. डॉ दीपक कोहली, पीएच.डी. - वनस्पति विज्ञान (बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश)
4. प्राचीन भारत में पर्यावरण (एक ऐतहासिक अध्ययन गुप्तकाल से पूर्वमध्य युग), शोधप्रबंध, डॉ. मृदुला चौधरी, गयाघाट वाराणसी, पृष्ठ- 1
5. महाकवि कालिदास की शकुन्तला और पर्यावरण (आलेख), उर्मिला श्रीवास्तव), पृष्ठ-335
6. संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चेतना के संदर्भ में आधुनिक कवि डॉ. राधेश्याम गंगवार के साहित्य का विवेचन, (आलेख), पिंकी तिवारी, 3 मार्च 2016, पृष्ठ- 86-88

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

|| Volume 11, Issue 6, June 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106208 |

7. पर्यावरण और प्रदूषण, डॉ. अरुण रघुवंशी, पृष्ठ- 1,25,44 से
8. ऋग्वेद, 1/90/6-8, यजुर्वेद, 13/27-29
9. पर्यावरण प्रभूत्वम् संस्कृत साहित्य एवं पर्यावरण, पृष्ठ-335
10. मनुस्मृति 4/56
11. संस्कृत साहित्य और पर्यावरण सुधार(आलेख), डॉ. रामहेत गौतम, 17 मार्च 2014, पृष्ठ- 21-24
12. संस्कृत साहित्य में पर्यावरण (आलेख), वीरराघव खण्डूडी, राजकीय स्नातक महाविद्यालय, उत्तरकाशी, 2017, पृष्ठ- 157 से 160
13. वैदिक साहित्य में पर्यावरण चेतना, रेनूसिंह (आलेख), गोरखपुर, 2015, पृष्ठ- 04 से 06

INNO SPACE

SJIF Scientific Journal Impact Factor

Impact Factor: 8.118

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

9940 572 462 6381 907 438 ijirset@gmail.com

Scan to save the contact details

www.ijirset.com